International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 75-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 75-77
© 2015IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 16-09-2015
Accepted: 20-10-2015

डॉ० राजकुमार महाजन
प्राचार्यएम.एम.डी.डी.ए.वी. महाविद्यालय
गिद्दड़बाहा

काव्यशास्त्रों में रमणीयता : एक निदर्शन

डॉ० राजकुमार महाजन

पंडितराज जगन्नाथ द्वारा रचित रस गंगाधर संस्कृत काव्यशास्त्र की अन्तिम सशक्त सर्जना है। उसमें इन्होंने काव्य का लक्षण रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[1] कहा है। संस्कृत काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा की इतिश्री वास्तव में पंडित राज जगन्नाथ के काल से ही समझी जाती है। पंडित राज के बाद आज तक वैसा धुरन्धर काव्यशास्त्र मर्मज्ञ पैदा नहीं हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम काव्य की परिभाषा में रमणीयता को प्रमुख स्थान दिया। पर पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी काव्य में रमणीयता को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया है।
यहाँ रमणीयार्थ शब्द की व्याख्या अपेक्षित है। स्वयं पंडितराज ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया कि जिसके ज्ञान से लोकोत्तर अर्थात् अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, वह अर्थ रमणीय है–

> रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनक ज्ञानगोचरता।[2]

काव्य से केवल आनन्द की प्राप्ति ही मानी जाये, तो तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है आदि वाक्यों से जो आनन्द मिलता है, उसका काव्य से प्राप्तव्य आनन्द से कोई पार्थक्य ही न रह जाएगा जबकि ऐसे वाक्यों को काव्य न मानना निर्विवाद सिद्ध है। पंडितराज के इस लक्षण की व्याख्या एक दूसरे ढंग से भी की जा सकती है। जिस शब्द अथवा शब्दों के अर्थ की भावना करने से किसी अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो, उसको अथवा उनको काव्य कहते हैं।[3] वस्तुतः पंडितराज का यह लक्षण बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें काव्य को शब्दनिष्ठ मान कर तथा लोकव्यवहार का साक्षी देकर यह सिद्ध किया गया है कि काव्यत्व केवल शब्द में रहता है। अर्थ तथा उसकी रमणीयता तो काव्य का प्रतिपाद्य है, जो शब्द के द्वारा ही प्रतिपादित होती है। अतः शब्द में शब्द ही मुख्य है। अर्थ तो उसकी एक विशेषता है। पंडितराज ने अपने काव्यलक्षण में रमणीयता का समावेश करके इसे पर्याप्त व्यापक बना दिया है। इस शब्द के अन्तर्गत ध्वनिकार आनन्दवर्धन का लोकोत्तर आह्लाद, वामन का सौन्दर्य, दण्डी का इष्टार्थ और कुन्तक का वक्रताजन्य आह्लाद आदि सभी तत्त्व आ जाते हैं।
काव्य में रामणीयकत्व केवल एक ही वस्तु से नहीं आ सकता। काव्य में रामणीयकत्व की वास्तविक सृष्टि छः साम्प्रदायिक दृष्टियों से भारतीय आचार्यों ने स्वीकार की है और वह सामान्यतया सभी के तत्त्वों के समावेश से ही हो पाती है। यह ठीक है कि सभी सम्प्रदायों वाले अपने अपने सम्प्रदाय का ढोल पीटते हैं और दूसरों का महत्त्व कम करके दिखाते हैं, परन्तु सभी का न्यूनाधिक अस्तित्व काव्य जगत् में सदा सर्वत्र बना रहा है। किसी भी एक की उपेक्षा काव्य को अपने काव्यत्व से स्खलित कर सकती है। अतः छः सम्प्रदायों के अनुसार काव्य में रामणीयकत्व का आधार करने वाले छः सम्प्रदाय हुए। कहने का भाव यह है कि रीति, ध्वनि वक्रोक्ति, रस, अदोषता, सगुणता, और आलंकारिकता से काव्य के स्वरूप की सम्पूर्णता का बोध नहीं होता। रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य मानना बहुत सीमा तक उचित है।

अलंकार सम्प्रदाय के अनुसार काव्य में रमणीयता

आचार्य भामह इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने काव्य की शोभा या रमणीयता के लिए अलंकारों की समुचित योजना को परमावश्यक माना है। उनका कहना है 'न कान्तमयि निर्भूषः विभाति वनितानानम्'।[4] अर्थात् जिस प्रकार सुमुखी कान्ता के लिए भी अधिक रमणीयता प्राप्त करने के लिए अलंकारों का प्रयोग अनिवार्य है, उसी प्रकार काव्य को शोभा युक्त बनाने के लिए अन्य सभी गुणों के होते हुए भी अलंकार का होना परमावश्यक है। इस सम्प्रदाय के दूसरे आचार्य दण्डी है। उन्होंने अलंकारों का विवेचन करते हुए लिखा है –काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।[5]
अर्थात् काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहते हैं। यहां शोभा का अर्थ रमणीयता ही है। इस तरह इन्होंने रमणीयता लाने वाले अलंकारों का प्रयोग काव्य के काव्यत्व के लिए अपेक्षित माना है।

डॉ० राजकुमार महाजन
प्राचार्य एम.एम.डी.डी.ए.वी. महाविद्यालय
गिद्दड़बाहा

इसी सम्प्रदाय के एक अन्य प्रसिद्ध आचार्य जयदेव ने काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि अलंकारविहीन काव्य की कल्पना उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान हास्यास्पद है –

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते तस्मादनमुष्णमनलंकृती।[6]

वस्तुतः इस सम्प्रदाय के आचार्यों के अनुसार काव्य की पूर्णतः तभी है जब वह शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों से युक्त हो। जिस प्रकार अलंकारों का कार्य पदार्थों को विभूषित करना है। इसी प्रकार काव्य में रमणीयता का आधान भी अलंकारों के द्वारा होता है।

2.रीति सम्प्रदाय के अनुसार रामणीयता

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन है। उनके अनुसार ''विशिष्टा पदरचना रीति''[7] अर्थात् विशिष्ट पदों की रचना ही रीति कहलाती है। विशिष्ट का अर्थ है गुण। इस प्रकार रीति का अर्थ हुआ–– गुण सम्पन्न पद रचना। वामन ने रीति के तीन वर्ग किये हैं–––– वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। वामन के समय तक काव्य में रमणीयकता के आधायक दो तत्त्वों का विवेचन हुआ था। ये थे गुण (रीति) और अलंकार। वे गुणों के महत्त्व को मानते हुए भी अलंकारों के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करते, वे कहते हैं– काव्यशोभायाःकर्तारो धर्माः गुणाः, तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः[8] अर्थात् जो रमणीयता के उत्पादक तत्त्व हों, उन्हें गुण कहते हैं और जो उत्पन्न रमणीयता को बढ़ाते हों, उन्हें अलंकार कहते हैं। इनके अनुसार काव्य की रमणीयता अलंकार पर नहीं गुण पर आधारित है।

3. ध्वनि सम्प्रदाय के अनुसार रामणीयता

ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन हैं, परन्तु इनसे भी प्राचीन आचार्य ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते थे– काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः यः समाम्नातपूर्वः[9]।
जहाँ अर्थ अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर व्यंग्यार्थ बन जाता है, वहाँ ध्वनि होती है। अलंकार तो अलंकार तभी तक कहलाते हैं जब तक उनमें अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति की अभिव्यंजना होती है। इस प्रकार हम देखते है कि व्यंजना अलंकारों का भी व्यापक धर्म है। अतः ध्वनि से ही काव्य में रमणीयता आती है।
आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वन्यार्थ या व्यंग्यार्थ से काव्य की रमणीयता बहुत अधिक बढ़ जाती है। वह काव्यश्री में उसी प्रकार महकती रहती है, जिस प्रकार सुन्दर रमणियों में रमणीयता या लावण्य की महक जगमगाती रहती है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाइगनासु ।।[10]

रससिद्धान्त की भान्ति ध्वनिसिद्धान्त भी काव्य का अन्तरंग पक्ष कहलाता है। अभिधार्थ मात्र अर्थ का बोध कराकर रसोदय में सहायक नहीं हो सकता। अतः काव्य में रस बोध कराने और रमणीयता लाने का मूल कारण भी ध्वन्यात्मिकता ही है।

4. वक्रोक्ति सम्प्रदाय के अनुसार रामणीयता

आचार्य कुन्तक इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। परन्तु इनसे पूर्व भी काव्य में वक्रोक्ति की महत्ता प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इसमें सर्वप्रथम आचार्य भामह का विवेचन उपलब्ध होता है। वे मानते हैं कि शब्द और अर्थ की वक्रता ही अलंकारत्व के सम्पादन में कारण होती है। भामह काव्य में वक्रोक्ति का विशेष महत्त्व स्वीकार करते हैं और वक्रोक्ति के अभाव में वे किसी भी काव्य का काव्यत्व मानने को तैयार नहीं। उक्ति अर्थ और भाव की वक्रता ही वास्तव में काव्यत्व का रूप धारण करती है। सीधा सादा कोई वाक्य कह दें– वह काव्य नहीं कहलायेगा। वक्रोक्ति ही वाणी का अलंकार बन उसमें रमणीयता का आधान करती है। तात्पर्य यह है कि नाक को घुमाकर पकडने से ही काव्यत्व का उदय होता है या फिर टेढ़ी अंगुली से घी निकालना ही काव्यत्व का प्राण एवं साधक है। आचार्य दण्डी भी इसे वाड्मय का एक भेद स्वीकार करते हैं––

द्विधाभिन्नं स्वभावोक्तिः वक्रोक्तिश्चेति वाड्मयम्।। [11]
अर्थात् वाडम्य के दो भेद होते हैं– 1. स्वाभावोक्ति और 2.वक्रोक्ति।

आचार्य वामन ने भी वक्रोक्ति को अर्थालंकार मान कर यह लक्षण दिया है–सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः।[12]
अर्थात् कुन्तक वक्रता का अभिधान काव्यत्व के लिए अत्यावश्यक ही नहीं बल्कि अपरिहार्य मानते हुए लिखते हैं–

वक्रोक्तिः प्रसिद्धाविधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा।
कीदृशी वैदग्ध्यमयी भणितिः।
वैदग्ध्यं विदग्धभावः, कविकर्मकौशलं, तस्य भङ्गी
विच्छित्तियो भणितिः। विचित्र्यैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते।[13]

अर्थात् प्रसिद्ध कथन से भिन्न विभिन्न अभिधा अर्थात् वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। यह कैसी है ? वेदग्ध्यपूर्णशैली द्वारा उक्ति है। वैदग्ध्य का अर्थ है विदग्धता, कविकर्मकौशल, उसकी भंगिमा या शोभा, रमणीयता उसके द्वारा उक्ति। विचित्र अभिधा को, वर्णन शैली को ही वक्रोक्ति करते है। अतः काव्य में शब्दार्थ की वक्रता के बिना रमणीयता नहीं आ सकती।

5. रस–सम्प्रदाय के अनुसार रमणीयता

आचार्य भरतमुनि रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। राजशेखर ने भरत से भी पूर्व रससिद्धान्त का आविर्भाव माना है। उसने आचार्य नन्दिकेश्वर को इसका पहला आचार्य घोषित किया है। अपने नाट्यशास्त्र में भरत ने स्पष्ट किया है–न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[14]
अर्थात् रस के बिना कोई अर्थ हो ही नहीं सकता। परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र के अधिकांश आचार्यों ने काव्य के अन्य तत्त्वों की अपेक्षा रस तत्त्व को ही सर्वाधिक महत्ता प्रदान की है। अग्निपुराणकार ने रस को ही काव्य की आत्मा माना– वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।[15]
राजशेखर ने स्पष्ट कहा है–शब्दार्थौ तौ शरीरं रस आत्मा।[16] आचार्य अभिनव गुप्त ने रसेनैव सर्वजीवितं काव्यम्।[17] कह कर रस की महत्ता को प्रतिष्ठित किया है। महिमभट्ट ने– काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद्विमतिः''[18] कह कर रस की उपादेयता को स्पष्ट किया है। पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को ही काव्य कहा। वस्तुतः अलंकार, गुण, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि सभी काव्य तत्त्व रस को ही केन्द्र बिन्दु मान कर उसके आस पास ही चक्कर काटते प्रतीत होते है। रस ही काव्य की आत्मा है, रस ही आनन्द का दूसरा नाम है, रस से ही काव्य में रमणीयता आती है। शेष काव्य तत्त्वों की तो न्यूनाधिक उपेक्षा भी की जा सकती है। परन्तु रस के बिना तो काव्य का अस्तित्व ही नहीं है। अलंकार (भूषण) के बिना शरीर रह सकता है, किसी एक अंग के न होने पर प्राणी जीवित रह सकता है, परन्तु आत्मा के न रहने से बाकी पूरे शरीर का कोई मूल्य नहीं। अतः रस काव्य की आत्मा है ही। भामह ने काव्य रस शब्द का प्रयोग किया है और महाकाव्य में रस की अनिवार्यतः स्वीकार की है। दण्डी ने माधुर्य गुण को रस पर्यवसायी बतलाया है और ग्राम्यती दोष के परिहार में रस की सत्ता मानी है। उनके मत में सभी अलंकारों का मन्तव्य काव्य को रसमय बनाना है।
रुद्रट ने पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा रस को अधिक महत्त्व दिया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इन्होंने ही रस को अलंकारों की दासता से मुक्त किया है। रीतियों तथा वृत्तियों के प्रयोग में रसानुकूलता पर

बल दिया है। आनन्दवर्धन ने भी ध्वनि आचार्य होते हुए भी रस को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। आचार्य कुन्तक का मुख्य विषय वक्रोक्ति का प्रतिपादन था, किन्तु उन्होंने भी स्पष्ट शब्दों में रस की महत्ता स्वीकार की है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी औचित्य का प्रतिपादन रस को आधार मान कर ही किया है। कहने का भाव यह है कि रस सम्प्रदाय से भिन्न सम्प्रदायों में भी रस की महत्ता की स्वीकृति किसी न किसी रूप में दिखाई पड़ ही जाती है। अतः रस काव्यसौन्दर्य या रामणीयकत्व का पर्याय ही है। इसके बिना किसी प्रकार का काव्य भी काव्य पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

6. औचित्य सम्प्रदाय के अनुसार रामणीयता

संस्कृत काव्य शास्त्र में औचित्य सम्प्रदाय अन्तिम काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय है। आचार्य क्षेमेन्द्र इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। औचित्य सिद्धान्त का विवेचन करके उन्होंने बताया कि काव्य में तारतम्य और सामंजस्य का होना अनिवार्य है। इन्हीं गुणों से काव्य में काव्यत्व आता है तथा इसकी प्रभावशक्ति बढ़ती है। हमें वही वस्तु अच्छी लगती है, जो हमारे मन से मेल खाती है। इस आधार पर इन्होंने औचित्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–

> उचितं प्राहुराचार्या सदृशं किल यस्य यत्।
> उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते।।[19]

अर्थात् अनुरूपवस्तुओं के योग को आचार्यों ने उचित माना है। और उचित के भाव को औचित्य कहते हैं। वस्तुओं के उचित प्रयोग से ही उनमें अतिशय प्रभावोत्पादकता तथा रमणीयता आती है। इसीलिए उसने औचित्य को काव्य की आत्मा घोषित किया है। औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्[20] अर्थात् औचित्य रसपूर्ण काव्य का स्थिर जीवन होता है। आचार्य आनन्दवर्धन ने भी अनौचित्य से बढ़ कर रसभंग का कोई कारण नहीं माना है, क्योंकि औचित्य का निबन्धन रस ही बहुत बड़ा तत्त्व है। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए, तो औचित्य सृष्टि के कण कण में व्याप्त है। जिस दिन इसमें अनौचित्य आ जाता है, उसी दिन यह नष्ट हो जाती है।

इस तरह सत्काव्य का जीवन और रमणीयता औचित्य पर ही निर्भर है। स्वयं क्षेमेन्द्र भी इस तथ्य से अवगत है, इसलिए उन्होंने काव्य के प्रत्येक अंग या उपकरण के औचित्य का विवेचन किया है। यथा रसौचित्य, अलंकारौचित्य गुणौचित्य आदि। अतः इसके बिना किसी काव्य तत्त्व में भी सामर्थ्य नहीं जो काव्य में सुन्दरता तथा रमणीयता ला सके।

इस प्रकार इन सारे सम्प्रदायों में अलंकार सम्प्रदाय ने अलंकारों को काव्यशोभा या रमणीयता का मूल उसी प्रकार माना है जिस प्रकार वनिता की मुखश्री के लिए आभूषण आवश्यक है। रीतिकार वामन ने काव्य में रीति का वही स्थान माना है, जो किसी चित्र में रेखाओं का होता है। यदि चित्र को साध्य मानें, तो रेखाएँ साधन होंगी। रीति काव्य शरीर में अंगस्थानों की तरह ही मानी गई है। कुन्तक द्वारा विवेचित वक्रोक्ति भी रस के उपकार में सहायता देती है। वह भी साधनमात्र है। औचित्य कोई अलग सम्प्रदाय नहीं हो सकता, क्योंकि औचित्य तो वह मूल तत्त्व है, जो सभी प्रकार के सुनियमों में विद्यमान रहता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अलंकार गुण रीति, औचित्य वक्रोक्ति ये तत्त्व तो काव्य शरीर को संवारते हैं, उसे रमणीय बनाते हैं, जबकि ध्वनि और रस काव्य की आत्मा को प्रकाशित करते हैं, उसे रमणीय बनाते हैं।

सन्दर्भ निर्देश

1. रसगंगाधर, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 16
3. वही. पृष्ठ 18
4. भामह, काव्यालंकार, पृष्ठ 23
5. काव्यादर्श, पृष्ठ 41
6. जयदेव पृष्ठ 32
7. काव्यालंकार पृष्ठ 8।
8. काव्यालंकार पृष्ठ 21।
9. ध्वन्यालोक पृष्ठ 16।
10. ध्वन्यालोक, पृष्ठ 46।
11. काव्यादर्श, पृष्ठ 26।
12. काव्यालंकार, पृष्ठ 31।
13. वक्रोक्तिजीवित पृष्ठ 48।
14. नाट्यशास्त्र, पृष्ठ 36।
15. अग्निपुराण, पृष्ठ 112।
16. काव्यमीमांसा, पृष्ठ 31।
17. अभिनव भारती, पृष्ठ 48।
18. व्यक्तिविवेक, पृष्ठ 59।
19. औचित्यविचारचर्चा, पृष्ठ 18।
20. वही., पृष्ठ 21।